इस नई सदी में

सुनील खन्ना

बोधि प्रकाशन

प्रथम संस्करण : 2000
आवरण चित्र : मेधातिथि
ISBN 81-87697-13-X

अनुक्रम

इंसान की अच्छाई, उसके परिवेश-सरोकार को शब्दों में पिरोकर
एक उम्मीद संजोयी है- इस नई सदी में

न्नों की शादियों का
र्चीभाई की तालीम का
दो जून रोटी का
पिता की बरसी का
माता रुक्ष होती हथेली को
उनको स ढ़ लेते होंगे पण्डित
बेशक ए नी हताश आंखों को
पर उनव पढ़ लेती हैं वहिनें
जो भूल चुकी हैं
र्लर के नियॉन बोर्ड
हर्बल ब्यूटी प कन्सेशन टिकिट की
12 से 3 के   पिक्चरें
फ्री की चपर-चपर
पॉप्कार्न य सां   और
र्थों में पैकेट्स लिये
दोनों बेफिक्र घूमती यौवनाएं
चेंं चिंता खा जाती है
उ घर के सूनेपन को
गली के अंधेरे को
वे आरज़ू रखती हैं
कि कभी कोई आये
को गाय औ बिस्कुट
जो कम दूध ारा कर हां कह जाये
के दरम्यान मुस्कुराती दग्ध नव नगीना
प कि गली गंतव्य है।

•

साथ खाना खाने से पूर्व मेरे मित्र
घर के पिछवाड़े एहतियात से
नीम का पौधा लगाते
और
मैं उनके बच्चों को बाल-कविता
सुनाने से पहले दुलार देता
ऐसे में
चाय की प्यालियों की आवाज़ों के बीच
हमें वो पुरातन हँसी याद आती
जब हम रमेश की तोतली बोली पर
मुस्काये थे
त्रिलोचन की लास्टिक नेकर
खिसक पड़ी थी
नंद सीधा, बहुत ही सीधा था
कि आगे चलकर मैं प्रशासन में
व गिरीश पच्चीस का होते ही
विधायक बनना चाहते थे
कि अब भी मैं किसी
बुनकर को
धागे बुनते देखता हूं
कि कहीं छूट गये शायद-
वे मित्रगत् ताने-बाने
गुम हो गई ऊष्मा उन पत्तों की
मेरे घर के पिछवाड़े नीम का पेड़
बदस्तूर बढ़ रहा है
जिसे मैंने रोपा था।

•

एक नदी चुपचाप

ठण्डे प्रदेश के
हरे ढलानों के किनारे से बहती है
एक नदी चुपचाप

जिसमें स्पंदन होता है
सैलानियों की नौकाओं के चप्पुओं का
मछुआरों की समवेत लोक-धुनों का
और
छात्रों के युवा-दल के मिले-जुले अट्टहासों का
यदाकदा
फेंके गये ढेले भी एक गोलाकार अशांति ला देते हैं इसमें
कि कलरव करते पक्षी-युगल
चाट जाते हैं नदी के कपोल
और वो
जलधारा के उछाल की
एक थपकी मार देती है
उनके उत्तेजित परों पर
नदी नहीं थमती
उसे बहना है निरंतर
उसके भाग्य में थमना नहीं, सूखना है
या शायद प्रचण्ड चण्ड अभिसारिका होना
जिसने हिम से सागर तक आते-आते वसंत भोगे
या चुपचाप बहते हुए महसूस किया उसे
चल पड़ी मरुधरा से मिलने
रचबस गयी, मरु के अंतःस्थल में
समा गयी अंततः नियति में
किनारे दुकानों के किनारे से बहती है एक
नदी पुरातन
जिसमें स्पंदन होता है।

•

ज़िंदगी

जिंदगी उदास ठहरी-ठहरी सी
बन गयी किताब
किसी अजायबघर की
मसाले में लिपटी ज़िंदा इबारत...
बन गयी घुटती सोच
छोड़ गयी श्वांस उचटती सी
खिज़ां के फूल हो गई ज़िंदगी
उदास ठहरी-ठहरी सी...
लम्हा-लम्हा छल ली गयी ये
इसकी मासूमियत रूमानी
पसर गयी यूं ही,
जैसे रुका हो कारवाँ कोसों चलकर
चलकर आया हो अतिथि प्यासा
प्यासे हों सपने अधमुंदे
है बहुत ठहरा-ठहरा
और जिंदगी उदास।

हे ययाति

प्रेम की अनुभूति छोड़
तुम वासना में जा मिले
हे ययाति!
अपनी भूख तुम खुद-ब-खुद
क्यों खो चले
पान, मदिरा, मदिराक्षी
नित अंग के करीब थे
किन्तु उनके भोग में भी
तुम अभी अधीर थे

राज-काज, परिवार-सुख
सब भूल गये
जाने क्यों ?
ग़फ़लतों के गम लिये
काम से तुम तन सिये
भटके फिरे न जाने क्यों ?
हे कापालिक!
खोपड़ी में क्या हो भूनने चले!
हे ययाति!
अपनी सुध तुम ख़ुद-ब-खुद
क्यों खो चले
अब तलक ललचा रहे
आँखों में डोरे लाल कर
कौन जाने कब कहाँ
अबला पे कामुक वार कर
छोड़कर इस व्याधि को
बन जाओ मानव गर कहीं
ऋषिवर के उश्राप से हो पाओगे
उऋण तभी
नियति की प्रवंचना से
तुम सिमटकर
बढ़ चले!
हे ययाति!
निज प्रीत की बेला में ही
सौरभ मिले...।

•

भीख

अलसुबह, मुंह अंधेरे,
कुहासे तले
बैठा मैं
बांच रहा था अखबार
बस स्टैण्ड की बैंच पे टिके,
ठिठुरती, सहमती एक किशोरी
(माफ कीजियेगा एक अर्द्धप्रौढ़ा)
ने कई लकीरों वाली हथेली फैलाकर
रोटी मांगी
रोटी और इसी सुबह
है न अटपटी बात ?
मेरी सूनी आँखों में देखो - वो बोली
अखबार में क्या धरा साहब ?
नस-नस दया के देख ली
सब... एक से
धन्य भाग! मैंने कहा
और मैं चल दिया
भजन गाते गली - मकान की ओर।

•

टुकड़े

पैन के निब से,
तितली के पंखों पर लिखें
कुछ अनछुआ, अनजाना,
अस्वाभाविक

संबंध प्यार का टुकड़ा है
या फिर समझौता,
रीता-रीता, ठहरा-ठहरा
सुगबुगाता रिश्ता

हिलते पानी में कभी अपनी परछाई
तुमने देखी है
स्याह रात की पीठ पर
सिसकते अमावसी
चाँद की तरह...

कुरेदो मेरे दिल को
कुछ कतरा-कतरा होगा,
रात आधी है अभी
कहीं सवेरा पसरा होगा।

•

मोची

[illegible]
[illegible] निराश [illegible] निराश
[illegible]

मेरे
दायां निलय बायां निलय
दायां आलिंद बायां आलिंद
और शिराओं में
रक्त का संचार
मेरे-तुम्हारे
दो-दो आँखें हैं
जो देखती हैं
सड़कें, झील, बरगद
लड़कियां और वो फूल
जिसे शायद मोनालिसा ने भी
न सूंघा हो,
फिर भी
तुम्हारी जीभ
दो फाड़ो में बंटकर
कसैली हो गयी है,
तुम्हें मालूम
खुली हवा में
सांस कैसे मिल पायी है
और तुम हो कि
रट लगाये हो-
पीछे मुड़, तेज़ चल
उस खंदक की तरफ
जहाँ कुछ लिखते हैं
दायें से बायें की ओर।

•

तयशुदा सपने

मैं सपने देखता हूँ
देखते रहना चाहता हूँ
हालाँकि इन तमाम महाभारतों, [illegible],
[illegible], परमाणुओं ..
[illegible] और

बलात्कारों से भरे पत्रों को
ठेल सकूं,
थोड़ा ठहर के सांस ले सकूं...
मैं समझ सकता हूं कि
सपने चुने जाते हैं
हकीकत के बिना
तथापि
वो ही तो ये समय होता है जब मैं
मेरे सपनों का भारत...
बनने की प्रक्रिया से पूर्व
अनसुलझी गुत्थियाँ
सुलझाने की चेष्टा में
रत रहता हूं-
ठोस, निर्विवाद, व्यावहारिक पहलू से
यह आमतौर पर ख़ुद-ब-ख़ुद होता है
और मैं हूं कि सोचता हूं
मैंने एक फांक तोड़ ली
चन्द्रमा की गोलाई से
मेरे ये सपने, मेरे अपने सपने
स्याही का रूप भी लेते हैं
दिशा-दिशा विचरते हैं
बोधिसत्वों की तरह
यदाकदा लौट आते हैं बेवजह
क्या करूं
मैं सपने देखता हूं, यह है तयशुदा।

•

जब ठण्ड हो बेकाबू

पूस की रात
लगा ठंड हो गई है अब बेकाबू
न कोई अलाव, न अंगीठी
न कंबल का टुकड़ा
या फिर पुआल ही आजू-बाजू
ऐसे में
निर्धनता की क्रांति

जन-जन भ्रांति
भोपाल त्रासदी ने पढ़ाया
कि ठण्ड और मौत से
समय-असमय बचने के लिये
घुटनों में मुंह डालकर
अंतड़ियों से छुआया जा सकता है ठुड्डी को!
महसूसी जा सकती हैं
अपनी गर्म सांसे
बांधी जा सकती हैं
हिमखण्डित हवाएं
या फिर
सोचा जा सकता है
उस मध्यम आग का
जो चहूं ओर से सेक रही है
तुम्हें हौले-हौले
या फिर
कोई तंदूर, सेक रहा है मुर्गा
और तुम
ले रहे हो गरमाई उसके ताप की
यह सब तो तुम्हें करना ही पड़ेगा
ताकि
भोर की पहली किरण तक का सफर
कट जाये बेखटके
रोज की तरह...।

मेरे दामन से
आई. एस. डी. / एस. टी. डी. / पी. सी. ओ. के सहारे
कई बतियाये
मैंने सुनीं -
दो तरुणियों की हंसी
वैधव्य लुटा चुकी यौवना की रुलायी
और
झंझावाती स्वर, पैंतरेबाज़ी
इन्हीं सबके सहारे तो जी रहा हूँ
मुझे नहीं पता कि
बाकी सब ऐसे ही जी रहे होंगे
दरअसल
अपने परिवेश की सीमा तक विस्तार है मेरा
न जाने कब
उखाड़ दिया जाऊँ
पहुंच जाऊँ विभाग के गोदाम में
एक उम्मीद जीऊंगा राइटऑफ होने तक
टेलीफोन-पोल हूँ मैं ।

•

शब्द एक समग्र परिभाषा

मेरी आंखों में साहित्य है
मुंह में बोल
हाथों में कलम
और
पीठ पर समाज का बोझ,
सोचता हूं काली स्याही में

सफेद पन्ने पर कुछ लिखूं
उधेड़ बुन को इबारत की सूरत दूं
चाहकर भी सीरत की तासीर
नहीं नाप सकता –
शब्दों के हाशिये पर...
क्यों ?
शब्द एक समग्र परिभाषा है
मेरे विचारों की,
एक उधेड़-बुन नहीं
जो सीमाओं के पार चली जाये
जहाँ
सीरत की तासीर
इबारत की सूरत
एकाकार हो
छिछलापन फैला दे
मुझे मालूम है
कई हैं जो हाशिये में
शब्द लिख
भविष्य को टटोलते हैं
हो सकता है
उनकी मजबूरी
पेट से जुड़ी हो
सच जो भी हो
यह सच है कि मुझे लिखना है
मेरी पीठ पर समाज का बोझ है।

•

खोज

आसमान-सा नीलापन
पानी पर फैलता सी [illegible]
अपने [illegible] में [illegible]

मांसल सहचरों की
गलवहियों में कैद
बेपरवाह
ढूंढ रहा है
समंदर सा नीलापन!
कि नीली है मछली
नीलगाय/नीलकंठ
और नीलिमा की नीली साड़ी भी...
संदेह से परे तक
व्याकुल है वो
चाहता है अनंतता
पंकिल राह के अंतिम ठौर पर
जहाँ से शुरू होगा
सूरज का चमकीला सफ़र
और उसका सफ़रनामा
उसने लिख लिया है
हाशिये में सब कुछ
बेशक खुली किताब का
पृष्ठ कोरा है!
कि नीली है मछली
नीलगाय/नीलकंठ
और नीलकमल
दवात की स्याही भी...।

•

शौक पाले जाते हैं...

मुझे शौक नहीं है
मरने का या फिर से जीने का
शौक तो पाले जाते हैं-
चंद दीवारों के कोनों में
गुलदस्तों के रैपरों में
और
मानुस-गंध में
शौक मुझे भी है
कविता लिखने का
क्योंकि मैं लिखता हूँ
इसलिये सोचता हूँ
क्या कछुए की पीठ
पर पौधा उगाया जा सकता
है गुलाब का
शायद नहीं
क्योंकि यह एक अहम मसला है
शौक नहीं ।

•

वो बहुत खुश है

दो वक़्त की रोटी तक जिंदगी है
जिसकी
वो क्या जाने
नयी लगी पिक्चर का

उम्मीदें

सड़क पर खड़ा है जो शख़्स
स्थितप्रज्ञ
ढेर सारी उम्मीदें बंद हैं
उसकी आँखों में
सिनेमा हाल के बाहर लगे पोस्टर से
उसे याद आ जाता है
चौखटे में बंद एक इतिहास-बोध
एक जिजीविषा अपने आप की
एक बेतरतीब जिंदगानी
उसे ज़रूरत है
उन राहों की
जहाँ खुशबुएं उसे ओढ़ लें
बंदनवार सज जाये जहाँ-वहाँ
और वो कहे
मैं तैयार हूं मेरे देश
मुझे कुछ करना है।

•

बूढ़े किसान की आशातीत
कुछ खोजती ये आँखें
ताज़गी भरे मुखड़े पर
हल्की सी मीठी सी
अनबन
उन्हें देखकर दो और दो चार हुई
ये आँखें
शोख गुलाबी चेहरे पर
ये अलसाये
शरबती नयन
और उनमें अपना अधिकार ढूँढती
ये आँखें
ढलते हुए सूरज की तरंग भरी ये
सुर्ख लाली
उसे प्याले में उतारती
ये आँखें
सात रंगों की डोर से बंधा
ये समां
उसमें बिखरी मानुस गंध में
कुछ खोजती
ये आँखें
आपके ज़हन में हुई हरकत और
नयन में छिपी हसरत
को ढाँपने की कशिश लिये
ये आँखें।

•

वो ही मटमैला धुआं
आस-पास बिखरा है
बिखरे हैं सपने
जो अब अतीत भी हैं

तुम भी क्या ज़िन्दगी...!

ज़िन्दगी क्या हो तुम बताओ
हाथों में कैद
कुछ खुशियां भर हो

शुरुआत

कुछ लोग अक्सर
सब्जी के भाव नहीं पूछते
मालिन से
वे खिंचे-चले जाते हैं
तराज़ू के पास

या नमकीन आँसुओं का सबब
फिर कुछ और ही है
तुम्हारा दर्शन
जैसे मुट्ठी की रेत
फिसलती हो आहिस्ता से...
जैसे चटक धूप मुंडेर पे
सिमटती हो आहिस्ता से
जैसे पड़ोस की छोरी
डालने लगे चुनरी
आहिस्ता से
जैसे भीगा गुलाब
चहकने लगे आहिस्ता से
बोल तो दो -
तुम्हारा/हमारा सहअस्तित्व
एक दिशा-बोध
एक वजूद तुम्हारा/सारी कायनात
जैसे हफ्तों बाद सुस्ताता कारवां
जैसे अंतरिक्ष में भटका
दिशाहीन स्पेस शटल
जैसे अपार जनसमूह
सम्मोहित करता एक माइक
तुम जैसी हो, अच्छी हो
जिंदगी!

•

शुरुआत

कुछ लोग अक्सर
सब्जी के भाव नहीं पूछते
मालिन से
वे खिंचे चले जाते हैं
तराजू के पास

जिनकी नोंक का कंपन
माम्य रखता है
उनकी उंगलियों के थरथराने में
जो अकस्मात् छू जायें कहीं पर
तो सहसा याद आ जाते हैं
वे शुरू के गुलाबी दिन
आसमानी पल
और न चाहते हुये भी एक
फिल्टर वाली सिगरेट
सुलगाने का जी करता है उनका
रोक नहीं पाते
लम्बे डग भरने की ख्वाहिश,
भागकर बस पकड़ने की तमन्ना,
किसी सिनेमा के
मस्त पोस्टर को देख लेने की आदत
उन्हें जरा भी नहीं सुहाता-
पूर्व दशकों का
अपना इतिहास लिखना
लिखना ऐसे ही चलती जिंदगी का
ताना-बाना
मुट्ठियों में हवा भर
वे हाथ उठाना चाहते हैं
वे समझ चुके हैं
कुछ अलग तरीके हैं
पुरजोर जीने के।

•

निकटता

खूबसूरत लड़की सड़क पार करती है
लड़का भी हो लेता है साथ
खूबसूरत लड़की फुटपाथ पर चढ़ती है
लड़का अपना कंधा छीलता है
अंगूठे के नाखून से
खूबसूरत लड़की चढ़ जाती है
खचाखच बस में
लड़का लटकता है फुटबोर्ड पर
खूबसूरत लड़की
खड़े हुए लड़कों के अंगों से
रगड़ती हुई उतर जाती है नीचे
लड़का धक्का-मुक्की से पस्त फंसा है
खूबसूरत लड़की
वस्त्र ढीले किये कमरे में बैठी है
वो अब सुस्ता रही है।

•

पैर

पैर जो कभी फुटबाल खेलता था
खेलते हुए चीखता था
पेले पेले या माराडोना
वो ही पैर भरी जून में
घुस जाता था
कीचड़ वाले पानी में
धान की रोपाई के लिये

वो ही पैर
जब तब दूसरे पैरों को देखता था
ट्रैक्टरों के एक्सीलेटरों पर
अब जबकि वो पैर
अंगद बन चुका है
तो यह सोचा जाना
मुनासिब होगा कि
उस पैर की दिशा क्या हो ?
पैर तो पैर है
जहां मस्तिष्क के तंतुओं ने
मोड़ा मुड जायेगा उस तरफ
कहीं झोपड़ी की खपरैल को
कुचल कर
गन्ने के खेत में घुस गया तो ?
किन्हीं निर्निमेष
पादुकाओं को चटका गया तो ?
किन्हीं निराश्रितों को
लतिया आया तो ?
या फिर
उस पार से उनमें
शैतानी भर लाया तो ?
दरअसल, पैर का काम है
चलना, मुड़ना, ठहरना
जरूरी नहीं कि
आदेश देने वाले मस्तिष्क तंतु
सदैव अपने स्वयं के ही हों।

•

स्ट्रेचर व कविता

मेरे मित्र शब्दों से खेलते थे
किसी कविता को ठेलते थे
संवेदनायें समेट कर

कलफदार कॉलर उमेठते थे
मुझे रश्क था
उनकी गतिविधि पर
अपने कृतित्व की परिधि पर
शब्द अब वाकई
उनसे खेलते हैं
भावनाओं के ज्वार ठेलते हैं
सिकुड़ी हुई हथेली की
रेखाओं में बंद यायावरी
उन्हें बिसूरती है
वे तकिये में मुंह घुसाकर
बेड-पैन टटोलते हैं
कोने में रुके
स्ट्रेचर को देख
फिनायल की गंध सूंघते हैं
किसी खिड़की की
जंग लगी जाली पर
अधमरे विचारों की
दर्दनाक श्रृंखला
उन्हें याद दिलाती है
शब्दों की फेहरिस्त का
सपाट सफर।

•

अवरोधित परछाइयां

फैलती हैं लम्बी-लम्बी परछाइयां
मुझे समेटने को
अंधेरे में
भटके हुए राहगीर की ही तरह
अपनी ही छाया को
पकड़ता हूं,
क्योंकि
जिस राह के लिये तरस रहा हूं
वहां परछाइयां खड़ी हैं।
अपने ही मन के बिम्ब में
समावेशित होकर
थक गया हूं, थक कर चूर
हो गया हूं,
क्योंकि स्वतंत्र मन की
चाहत तो कोसों दूर खड़ी है,

केवल सायों से घिरे खड़ा हूं...।
उलझे हुए पंछी की तरह
छटपटा रहा हूं,
अपने को कोस रहा हूं
मसोस रहा हूं
काश!
ये परछाइयां ये साये
दूर बहुत दूर हो जायें,
क्योंकि
सुलझे हुए व्यक्तित्व हेतु अभी
केवल कल्पनाशील हूं...
उस अंधेरे को समेटने के लिए
प्रेषित होता हूं,
खिसकता हूं पर ठिठकता हूं,
क्योंकि
उन अवरोधित परछाइयों ने फैला रखा है
केवल सत्रांस...
जिस साहस का प्रयत्न करता हूं
वह दु:साहस
बनकर मेरे अन्तर्मन की
असीम वेदना को कुरेद देता है
और
एक पटाक्षेप की तरह स्वतंत्र व्यक्तित्व की
केवल कल्पना रह जाती है,
कोरी कल्पना।

•

बिंदास लड़की

बड़ी तरतीब से ढली थी
उसकी वो काया
और

मासूम सौंदर्य
ठिठका दिया मुझे
ज़ैबरा क्रासिंग पर
उसकी बेफ़िक्र चाल ने,
समवेत स्वरों में गा उठी
मेरी आत्मा
श श श / आह! / हाय
ऐसा कुछ बुदबुदा उठे लोग
ऐसा मैंने सोचा था
अब
जबकि मुझे पता चला
वो मासूम नहीं- माशूक है
बहता दरिया है,
अंगारों का जखीरा है
तो, लिजलिजा गयीं तंद्राएं
सहेज दिये ख्याल
पेपरबैकनुमा
खुले नोट छाँट लिये भाड़े के
कोई भी तो नहीं कहेगा
सही था मैं।

■

ढलती शाम

आसमान में
परिन्दों की यापसी की
फड़फड़ाहट
तूलिका की
रंगीन कसमसाहट
कैनवास से जुड़ने को,
और
एक बेतरतीब भीड़ की
घरोंदों में घुसने की बेताबी -
चौराहों पर चीखते हुए
होर्न्स का शोर-
नियॉन के वैश्याई इशारे -
फ़व्वारे की शरबती तरंगों का
ठण्डा संगीत,
सुर्ख मेक-अप समेत नैनों में
एक अदद रूमानी पैगाम-
ढलती शाम...।

•

रिक्तता

शब्दों के अर्थ हुये बेमाने
चेहरे लगते हैं बस जाने पहचाने
संबंधों में हुई रिक्तता गहरी
संबोधन से प्रीत हो गई बैरी
दिन-प्रतिदिन स्व लिये विचरते
पर आँखों में वेदना ठहरी
वर्षों तक सुख-दुःख भोगे संग
अब मन से अनजान
ओज खो चुका उन लम्हों का
नाते सब वीरान
शब्दों के अर्थ हुये बेमाने
चेहरे लगते हैं बस जाने पहचाने।

•

एक प्रयास

मुझे उस हमाम में क्यों धक्का देते हो,
जहाँ फुहारे की फुहार के साथ
कीचड़ भी उछाली जाती है - समाज द्वारा

चारों तरफ से घेरे खड़े वस्त्रहीन लोगों के द्वारा
एकटक घूरते रहना
मुझे सरासर अपनी उपेक्षा लगती है
फुहारे से आता हुआ
शीत-ऋतु में यह गुनगुना
पानी...
मुझे वो लावा लगता है, जिसके हर
तरह के नज़ारे देखने पर भी
पास कोई नहीं आता है
उत्सुकता शांत करने...
पर लगता है मैं ही एक जीर्ण-शीर्ण
निपट अकेला हूँ, इस मायाजाल में
जिसे डरावनी घाटियों में भी एक लपलपाते
फन की ओट से घण्टियों की
मधुर झंकार सुनायी देती है
एक प्रलोभन के तौर पर...
और
पास आती हुई,
उन अधनंगी आकांक्षाओं
को ढकने के प्रयास में...
खुद सराबोर हो जाता हूँ,
उस गर्म लावा
और उछलती कीचड़ में
शायद अब हमाम में एक से ही हो जायें...।

•

विघटन

आओ
अपनी मंजिल के फर्श को तोड़ें
जिससे नीचे वालों को छत न मिले
आओ
तितली के पंखों को नोचें
ताकि उसकी बदसूरती दिख सके
आओ
उस भीड़ पर उछाल दें
तमाम छिपकलियाँ
कुछ मरी कुछ अधमरी
और फिर से आओ-
इस उजड़े दयार में खड़ा कर तो दें
एक अदद गिद्ध
वर्तमान की विडंबना है यह
या भविष्य से... ?

•

कर्मण्येवाधिकारस्ते

उठाओ अस्त्र, झुका दो शस्त्र
जो जुड़े हैं परमाणु विभीषिका से
उठाओ मस्तक,
झुका दो किसी देवालय की

चौखट पे
जहाँ रात की रानी की छांव तले
बांसुरी की धुन गमकती हो
लम्हे सैंकड़ों हैं
सही तौर से जीने के

उठाओ कलम,
लिख मारो कुछ भला-सा
अपनों का/परायों का
मैंने कब कहा कि
जीवन रूमानियत के बिना है

उठाओ फूल,
सहलाओ कपोलों को
अपनों के/परायों के
ज़मीन जो है उसमें,
पपड़ी हैं सूखे की

उठाओ कुदाल,
करो भागीरथी
हो स्तुति
देवों की/देवियों की।

•

पसरी दोपहरिया

लो एक दिन और बीता
रीता, रीता...
पसरी दोपहरिया जेठ की
ठहरी-सी संध्यायें
उसांस-सी निशा-बेल
उच्छ्वास परिंदो के किलोल
बस भीगी चोंच से
उमंगित मानव जन
अंजलि भर सौगात से...
तपिश बैचेनी, स्वेदप्रवाह
लू की मार
बारम्बार
सुस्ताता कारवां कहीं
सबीलों के पास-निश्चिंत
पसरी दोपहरिया जेठ की।

•

कुछ औरतें

कुछ औरतों की सूनी आँखों पर
टंगा है दर्द
जिसमें बेपनाह मोहब्बत कैद है
जो चाहती है इकरार, इसरार
आगोश में लेने का...
उन कुछ भद्र औरतों के लिये
सब भले हैं
ऐसा ये सोचती हैं
पर सब ऐसा नहीं सोचते
इससे उनकी गले की सोने की चैन के सूत्र
अर्थवान् होने लगते हैं
मंगलमय नहीं
दरअसल
आधी उम्र पार करने से पहले
उन्हें बुढापा सालता है
और ये प्रौढ़ाएं षोड्शी का चोला उतारने को कटिबद्ध
भद्र लोगों का सानिध्य चाहने लगती हैं।

•

पश्चाताप

बीमारी
अभिशाप नहीं है मेरे लिये
एक पश्चाताप है
कुछ बूंद आँसुओं का
नमकीन स्वाद है यह
कई क्षितिजों को चीर कर
ज़माने की कड़वाहट को सटक कर
उतर आने का सायास प्रयास है
फिर उसी धरातल पर।

•

अबाध

जिसे कविता कहते हैं
उसे लिखते हुए भूल जाऊंगा
सागर के तल की नाप

अंतरिक्ष की अनंतता
और
न ही कांपेगी मेरी कलम
कह भी दें लोग नचिकेता,
जुझारू या कुछ और
कोई समझौता, मध्यस्थता
नहीं-
विचारों की शृंखला के पैनेपन की
अबाध गति से दौड़ेगा
ये मन का वीडियो कैमरा
कर लेगा कैद
ढढाकर हंसती गेहूं की बालियां
चटकती धरती पर पड़ती कुछ बूंदे
नये चढ़े यौवन को देख
यक-ब-यक गंभीर हुई बाला
और
सूरज का ढलने से पहले सिसकना
कुछ अलग भी ढूंढ ही लेगा मन
जो कर देगा सारवान
मेरी कविता को।

•

ओठों से नहीं मुस्कराया जाता मुझसे...

मेरा मुस्कराना बदस्तूर जारी है
अलबत्ता
मुस्कराता हूं तो आंखों से, दिल से
ओठों से नहीं मुस्कराया जाता मुझसे

दरअसल
द्रष्टव्य नहीं है वो मुस्कराहट
न तो ई.सी.जी. में उसकी रीडिंग आ सकती है
न चश्मे के रंगीन काँच के पीछे
दपदपाती आँखें दिख पाती हैं

इस किस्म की मुस्कराहट संजोये जो हैं
उन्हें ढूंढना पड़ता है-
खेत-खलिहानों में
दफ्तरों में
स्कूलों में
बाज़ारों में
राजनीतिक गलियारों में
नाट्यशालाओं में।

कई एक हैं
जो ओठों पे पिंगपोंग खेलते हैं
और
राजनीति-शास्त्र पढ़ने लग जाते हैं
वैसे तो
चौथी के बच्चों को भी मुस्कराना
सिखाया जाता है स्कूलों में
वे मुस्कराते हैं
तब नागरिकशास्त्र पढ़ रहे होते हैं
मैंने
मुस्कराना चाहा जब
एक रेखा सी खिंच गयी
जो मुझे बेमानी लगी।

•

अंधेरा

मैंने एक दिये पर दूसरा, दूसरे पर तीसरा
ऐसे कई एक दिये जलाये - सजाये
सबसे नीचे के दिये तले
फिर भी
अंधेरा था।

•

और तुम

नीला गगन
नीला सागर
नीली तुम्हारी आँखें
मैं और तुम
तुम और मैं
और
सपनीली बातें।

•

अपने आप में

अक्सर कुछ लोग
अपने आप में समाये रहते हैं
बना लेते हैं एक दायरा अपने चारों ओर
जिसमें रमती हैं भूली यादें, संवेदनाएं
और
तन्हाई की ताकत
एक लुत्फ़ ले लेते हैं वे
खुद में सिमट जाने का
खुलासा नहीं चाहते दूसरों के सामने
समीचीन नहीं हो पाते उनके शब्दों के चयन
उड़ते कबूतरों को दाना डालते वक्त
वे जान नहीं पाते
आसमान में उड़ने का मज़ा
इसी तरह
किसी नये जोड़े का किसी ठेले पे खड़े होकर
चटपटी चाट का खाना
युक्तिसंगत नहीं लगता उन्हें
वे लौट जाते हैं उसी कैनवास के पास
जहाँ सूरज पहाड़ियों के पीछे रहता है।

•

धूप

आज हौले से मेरी छत पे नरम धूप आयी
सहला गयी अपने गर्म कपोलों से मुझे
अल्साये से विचार थे जो मेरे
मखमली अहसास दे गयी उन्हें
उनिंदा-सा था मन मेरा तन मेरा
पहलू में क्या आयी वो
खुली किताब कर गयी मुझे
आज हौले से मेरी छत पे नरम धूप आयी
सहला गयी अपने गर्म कपोलों से मुझे

हर सर्द में छत पर धूप
तू क्यों आती है
और
अपने सरसराते ताप से अरुणाई लाती है
मान ले
स्थितप्रज्ञ हूं
जड़वत् भी हूं
और तेरी ये शाश्वत शरारत
रिसा देती है उन दु:खों को और मुझे।

•

प्रतीक्षा

बंद कमरे में
शहरे खामोशी है
और

है तन्हाई
टूटकर चाह रही है
जो तुम्हारा आना
ऐसे में
बंदनवार सजाये हैं
मेरी कविता की पंक्तियों ने
खुशबुएं बिखरी हैं
गहरी निःश्वास की
धुएं से लदा है
पर्वत पर उजाड़ मंदिर
और
एक शहनाई की
स्वर-लहरी में
मूक निमंत्रण है!
कब तक चुप रहे ये मन
बंद कमरे में
शहरे खामोशी है
और
है तन्हाई
टूटकर चाह रही है
जो तुम्हारा आना।

•

टंगी हैं तुम्हारी खुशबुएं

मेरी अलगनी पे टंगी हैं
तुम्हारी खुशबुएं
उन खुशबुओं में रची-बसी हैं
मेरी नर्म-गर्म साँसें
तुम्हारे इन्टीमेट की इन्टीमेसी की तरह...
और
हवाओं की रफ्तार थामी है उनने,
निशा बेला में चाँद-सितारों की ओट दी है
मुझे
सचमुच, अलगनी पे टंगी ओढ़नी
मेरे बहुत निजी लम्हों की गवाह है
दहाड़ते समन्दर की शांत नीलिमा है
अटूट-रिक्तता का अनंतिम दर्शन है यह
जिये हुए क्षणों का करीबी सहारा है
जो कि
याद दिलाता है तरतीब से सब कुछ।

•

बचे वक्त का एहसास

कई एक हैं यहाँ
जो शाम को घर की घंटी बजाते हुए
देख लेते हैं चिड़िया का घोंसले में जाना
एक गुलाबीपन दौड़ जाता है उनके नाखूनों में
एक साथ सबको देखकर
पूरे दिन काम की मारामारी ने
एक अलगाव-सा ला दिया है उनमें
जो दिन ढले दूर हो पाता है अपनों में
जो उनसे चाहते हैं - बचे वक्त का एहसास
जब भी उन्होंने
एक सनसनाता ताप महसूस किया है

कान की लौर के पास
और
वे बन जाते हैं एक विरासत
जहाँ सारी संज्ञायें शून्य
विचार अस्तित्वहीन
वर्जनायें समाप्तप्राय: हो जाती हैं
ऐसे में
सुबह स्कूल छोड़ने जाते वक्त
नन्हीं उंगलियों से हाथ पकड़ना
भला लगता है उन्हें
वे कुछ एक घण्टे बाद की धूल सनी
फाइलें
मुंह बिचकाती जिज्ञासायें
और साहब का छुट्टी पे होने की तसल्ली से
निज़ात पा जाते हैं
वे हौले से झटक देते हैं
रूटीन वाला शिकंजा
उन्हें लगने लगता है
आसपास के पेड़, बिजली का खंभा,
ये डामर की सड़क
उन्हें सलाम कर रही है
पूरी शिद्दत से
और वे
भरी पूरी तनख्वाह के साथ
पेंशन के बाद वाली बेफिक्री जी रहे हैं।

●

अतृप्त बसंत

मैं एक पेड़ हूं
कई बार बसंत आया मुझे छूने को
सरसराने को -
मेरी कोंपलों में एक कम्पन
अघोरियों ने बहुत छकाया उसे
नासपीटा पतझड़ का दोस्त,
हमारे बसंत का साठगांठी और
न जाने क्या-क्या कहा उसे
आखिर बसंत लौट गया
छोड़ गया तन्हा मुझे
चुक गयी हरीतिमा मेरी अरुणाई की
लिजलिजा गया
शब्द मधुमास मेरे लिये
कौन कहे - जिओ और जीने दो
मैं एक पेड़ हूं।

•

पर, तुम न आईं

सोचा था तुम आओगी
अपनी तन्हाई को जताओगी
मेरी गुमसुम बैठी काया के
कंधे से सिर टिकाकर
ढाँप दोगी मुझे
अपने नरम गेसुओं से
और होगी मेरी हमसफर...
देखो तो,
तुम्हारी अगवानी में
चाँद तारे भी निकल आये
और तुम्हें चाहने की आरज़ू में
मैं बैठा रहा बैचेन गुमसुम
पर, तुम नं आईं।

•

कैसी मोहक तुम

सरसराती शाम को
या हो फिजां में रागिनी
भोर की सुरमुई छटा तुम
या चमन की मालिनी
छू लिया जो तुमको समझो
टेसू खिले डाल पे
ओस की भीगी कली तुम
सुबह-सुबह की ग्वालिनी
कपकपाती ठण्ड सी तुम
पीली निखरी धूप भी
सांध्य की सहमी चकोरी
कैसी अनबुझ बावरी
जैसे ढेरों दीप प्रज्वलित
ऐसी तुम हो चाँदनी।

•

मुस्कराहट और तुम

तुम मुस्करा दीं मेरे लिये
सारे सितारे चमक गये
धूप के आसमान में
एकबारगी में गद्‌गद हुआ
रोमांच सा तिर गया नसों में
बहुत सारे ख्वाब भींच लिये
अपनी मुट्ठी में
कि एक-एक करके देखूंगा
प्रतिदिन दिन की नींद में

कि किसी चटक धूप में
तुम और मैं
किसी बरगद से
सिर टिकाये सोचते रहेंगे सारी धूप
अपनी-अपनी ढेर सारी बातें
कि सांझ ढले तुम मुझे कुछ नहीं कहने दोगी
और
खुद भी कुछ नहीं कह पाओगी
कि हम रोज मिलेंगे, भारी दोपहरी पास-पास
सटकर बैठेंगे कहीं
और
बोलेंगी सिर्फ
हमारी बातूनी आँखें
ये जो रुमाल होता है न
कभी अंगुली पर लपेटोगी
तो कभी इससे हंसी दबाओगी
तो कभी झुकी हुई आंखों को ढक दोगी
इससे
पर मुझे क्या
मेरी तो इल्तज़ा होगी तुम्हारे दो बोल की
और
किसी एक दिन जाते हुए हवा में एक शब्द
उछाल जाओगी, प्यार
तुम अभी भी मुस्करा रही हो

•

मेरी ही तो थी तमाम

मैंने क्यों चुरा ली तुम्हारी हँसी
जिसे बड़ी तरतीब से
तराश लिया था तुमने
- कि लबालब उठे हुए भरे से ओंठ
ढांप दिये हों काँच के फुटे से
कि टांक दी हो
खीज भरी शिकस्त
मासूम खिलखिलाहट पर
कि उठा दिये हों नकाब

किसी साड़ी शॉप की डमी के
वो हंसी
अलबत्ता, मेरी ही तो थी तमाम,
जिसे फुलाए हुए तकिये में
गर्म सांसों का प्रमोदन मानता था मैं
मानता था उसे
सागर के तलछट की सीपिकाएं
निहारिकाऐं -
मेरे चक्षुओं के अनंत व्योम की
कि तुम्हारी चाहत में
उठा दिये हों हाथ सौ-सौ बार
मेरी जानिसार
अब यह मानना नामुमकिन है
कि तुम्हारी वो हंसी
तब्दील हो चुकी होगी
एक सिसकी में
कि गड्ड-मड्ड हो चुकी होगी
किसी सभ्यता के फासिल्स में
तुम देख लो
चाहें अखरोट के पेड़ों की ओट से
देवदार की
ऑक्सीजन युक्त छाँव से
आबनूसी दीवानगी से
तुम तो हँसती रहोगी सर्वदा
मेरे ही लिये।

•

सवाल पहल का

शहर के करीब
चीनी-मिल जाने तक
गिरगिट मुंह में दबाये सांप को देख
रुक जाता हूं
यह सांप का व्यभिचार है
गिरगिट के प्रति
या उन दोनों से जुड़ी एक नियति..

मात्र विडम्बना कहकर
इस खौफ को टाला नहीं जा
सकता
क्योंकि
तुच्छ प्राणी ने भी संजोये हैं
कुछ मूल अधिकार अपने ज़ेहन में
जिनकी बदौलत
वो गरदन अकड़ाता है,
दुम फड़फड़ाता है
रंग बदलता है...
पर
रंगहीन भी हो जाता है
किसी खुराफ़ाती मुंह में...
अब मुझे जरूरत है
उस रोडवेज़ ट्रक की
जो नेशनल-हाईवे पर,
मेरे शहर और चीनी मिल के बीच
साधिकार पगडण्डी पर चले,
जहां व्यभिचारी फन
कुचल दिये जायें
बेशक कुछ और
मूल-अधिकार दबा दिये जायें
ऐसा हो, तो होता ही रहे
क्योंकि हर शहर अपने करीब
एक अदद सड़क रखता है।

•

सिलसिला थम न जाए

हर उस शख़्स से मुझे डर लगता है
जो कहता है तू अपना सा लगता है
पंजों पे खड़े होकर भीड़ से झांका है जिसे
वो मुस्करा दे अगर तो मुझे डर लगता है
कई घर बनाये, गिर गये मिट्टी के थे न
सिलसिला थम न जाये, डर लगता है
तमाम उम्र गुजरी उन्हें आप कहते-कहते
वे कहीं मुझे आप कह दें, डर लगता है
सात रंग, मौसम भर भर लूं अपनी आंखों में
कहीं कोई डाल दे नकाब, डर लगता है



चांदनी जो ओढ़ी मैंने

क्वारी काया पे चांदनी जो ओढ़ी मैंने
सरसों के फूल इतराने लगे

सरकने लगे दोपहरिया के टुकड़े
परिंदों के झुण्ड घर जाने लगे

हलचल सी थी तेरी मेरी सांसों में
केसर के खेत ये बताने लगे

आओ पढ़ें हम आँखों की भाषा
वो चातक युगल कुछ गाने लगे

ओठों पे कलियों की खुशबू जो पायी
झुकने लगी देह ख्वाब आने लगे।



अपना वही इक गाँव

इस शहर को ये दर्द है कि हम नहीं चाहते
हमको तो पसंद है अपना वही इक गाँव
कब कौन मुस्करा दे रखे दिल में एक जलन
न खेत हैं न पौखरें न पीपल की घनी छांव
हमको तो पसंद है अपना वही इक गाँव
तुम भी चलो अब चल तो दें अपने उसी ठौर
धुआँ है रंजिशें हैं दहशते हैं इस ओर
मैं यहाँ कई बरस जीया जीने की चाह में
चहका बरसों बरस जहाँ अपना वही इक गाँव
इस शहर को ये दर्द है कि हम नहीं चाहते
हमको तो पसंद है अपना वही इक गाँव।



तुम से अच्छा...

तुम से अच्छा और न दूजा
औरों की हम बात करें क्यों
रसवंती ओठों को बूझा
फिर कलियों की बात करें क्यों
मृगनयनी तुम निशा अप्सरा
मेरे अंतर की रुनझुन हो
साथ तुम्हारा पूर्ण समर्पण
उन बाहों की बात करें क्यों

गर हम बरसों पूर्व जो होते
संग-संग हंसते संग-संग रोते
तुम होती पर्वत शृंखलाएं
मेघा बन हम चूमा करते
अब हर पल बस तुम ही तुम हो
मेरे गीत की स्वरसजनी हो
ओस में भीगी हरियाली तुम
तन सुगंध की फुलवारी हो
अटक गया मैं इस उपवन में
फिर मरुवन की बात करें क्यों
तुम से अच्छा और न दूजा
औरों की हम बात करें क्यों
रसवंती ओठों को बूझा
फिर कलियों की बात करें क्यों।



सुनील खन्ना

सुनील खन्ना मूलतः कवि हैं, साथ ही नाट्य लेखक व अभिनेता भी। कई वर्षों से पत्र-पत्रिकाओं में सतत रूप से इनकी कविताएं प्रकाशित हो रही हैं तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर भी इनका काव्य-पाठ प्रसारित हुआ है। हिन्दी व अंग्रेजी के कई नाटकों, दूरदर्शन धारावाहिक, फीचर फिल्म में भी अभिनय कर चुके हैं। नाटक के साथ-साथ काव्य-लेखन निर्बाध रूप से जारी है। सहज, सरल एवं उद्देश्यपरक कविताएं लिखने के पक्षधर होने के कारण अपने समकालीन कवियों में सुनील खन्ना की पहचान अलग से की जाती है। पुस्तकाकार में यह इनकी पहली कृति है-जिसके तेवर तीखे हैं और संकेत स्पष्ट। संप्रति आप बैंक ऑफ बड़ौदा, जयपुर में कार्यरत हैं।

संपर्क : 52/127, वीर तेजाजी रोड, मानसरोवर, जयपुर-302 020
दूरभाष : 0141-390109

मूल्य 80/-

ISBN 81-87697-13-X